यज्ञ

क्या हम शुद्धता से करते हैं ?

गायत्री यज्ञ जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग है, परन्तु क्या हम यज्ञ नियमों के अनुसार करते हैं? यदि ऐसा नहीं करते, तो फिर हमारा परिश्रम और यज्ञ करना सब कुछ व्यर्थ है, मात्र तिल जौ या घृत जलाना है इसीलिए तो इतने यज्ञ करने के बावजूद भी कोई सफलता नहीं मिलती, दरिद्रता नहीं जाती, आर्थिक उन्नति नहीं होती, और न घर में सुख-शान्ति आ पाती है। गायत्री साधक, वेद वेदांग अध्येता श्री अर्बुदेश्वर महाराज का सारगर्भित महत्वपूर्ण चिन्तनीय लेख...क्या हम शुद्धता से गायत्री यज्ञ करते हैं?....

गायत्री यज्ञ अपने आप में एक पूर्ण विद्या है और जब तक पूरे विधि-विधान के साथ यज्ञ नहीं होता तब तक उस यज्ञ का फल किसी भी प्रकार से साधक को प्राप्त नहीं हो पाता, यज्ञ करने का तात्पर्य केवल अग्नि जलाकर उसमें घी की या तिल-जौ की आहुति देना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु आवश्यकता इस बात की है कि पूरे विधि-विधान के साथ कार्य सम्पन्न हो।

भारतवर्ष में यज्ञ प्रथा प्राचीनकाल से चली आ रही है, यज्ञ के माध्यम से हम सम्बन्धित देवता को प्रसन्न करने के लिए आहुति समर्पित करते हैं, और उस देवता तक आहुति भाग पहुंचाने का कार्य अग्नि के माध्यम से सम्पन्न होता है, इसलिए अग्नि उस हविष्यान्न को सम्बन्धित देवता तक पहुंचाने का पूर्ण और सक्षम माध्यम है, पर यदि सम्बन्धित विधि-विधान को पूर्णता के साथ नहीं किया जाय तो इससे लाभ की बजाय हानि ही होती है, क्योंकि वह सारा आहुति में दिया जाने वाला द्रव्य व्यर्थ और निष्फल होता है।

इसलिए हमारे धर्म शास्त्रों ने कर्मकाण्ड की विस्तार से व्याख्या की है, और इस सम्बन्ध में प्रमाण दिये हैं, एक निश्चित नीति निर्धारित की है, और उसके अनुसार कार्य करने पर ही सफलता प्राप्त हो सकती है, ऐसा बताया है।

यज्ञ के रुप-

आजकल भारतवर्ष में यज्ञ करना एक सामान्य कार्य मान लिया गया है, साधक अपने घर में ही अग्नि जलाकर गायत्री मंत्र से आहुतियां देने लग जाता है, परन्तु वह यह नहीं समझता, कि ऐसा करके वह अपना ही नुकसान कर रहा है, क्योंकि यदि सही तरीके से कोई कार्य नहीं होता तो उसका विपरीत परिणाम भी प्राप्त होता है, कई साधक अपने घर में ताम्र पात्र रखते हैं, और उसमें नित्य घी की आहुतियां देते हैं, परन्तु इस प्रकार से मात्र घी की आहुतियां देना कर्म काण्ड के नियमों के सर्वथा विपरीत है, और ऐसा करने से उन्हें किसी प्रकार का कोई लाभ नहीं हो पाता।

मैंने देखा है कि पूरे भारतवर्ष में यज्ञ की प्रथा है, और सभी साधक अपने नियमों एवं प्रकृति के अनुसार यज्ञ का विधान करते हैं, परन्तु इनमें से जितने भी साधकों से मैं मिला हूं, उन सभी ने एक स्वर से यह बताया है कि पिछले कई वर्षों से वे यज्ञ कर रहे हैं, परन्तु उन्हें अभी तक किसी प्रकार का कोई लाभ नहीं हुआ है।

कई साधकों ने मुझे यह भी बताया कि वे नित्य 101 आहुतियां देते हैं, और ये आहुतियां गायत्री मंत्र के साथ अग्नि को समर्पित करते हैं, परन्तु इतने वर्षों के बाद भी उन्हें किसी प्रकार का भौतिक या आध्यात्मिक लाभ नहीं मिल पाया है।

इसमें गलती गायत्री मंत्र की नहीं है और न गायत्री मंत्र देने वालों की गलती है, गलती तो इस बात की है, कि यज्ञ-विधान जिस प्रकार से होना चाहिए, जिस प्रकार से यज्ञ किया जाना चाहिए, उस प्रकार से यज्ञ सम्पन्न नहीं हो पाता, और इसीलिए उसका लाभ नहीं मिल पाता है, गुजरात के धीरज भाई तो दस लाख आहुतियां गायत्री मंत्र की दे चुके हैं, परन्तु उन्होंने भेंट में बताया कि इतना कुछ

करने के बावजूद भी मैं अभी तक वहीं पर हूँ, जहाँ पर पाँच वर्ष पहले था, किसी प्रकार का कोई लाभ या उन्नति नहीं हो पाई है।

वस्तुतः जैसा कि मैंने ऊपर बताया कि धीरज भाई जैसे और भी सैकड़ों हजारों साधक हैं, जो यज्ञ में आहुतियां देते हैं, परन्तु एक प्रकार से वे घृत या यज्ञ में दी जाने वाली सामग्री का दुरुपयोग ही करते हैं, क्योंकि वह सामग्री मात्र अग्नि में जलती ही है, अग्नि देवता न तो उसे स्वीकार कर पाते हैं, और न सम्बन्धित देवता तक वह आहुति पहुंच पाती है, क्योंकि इसके पीछे एक निश्चित नियम और विधान है, एक निश्चित मंत्र और उसका प्रयोग है और जब तक वह प्रयोग या विधान नहीं होगा, तब तक सफलता किसी भी हालत में नहीं मिल सकती।

मैंने कई प्रकार के यज्ञ देखे हैं और इन बड़े-बड़े यज्ञों में बहुत ही कम ऐसे यज्ञ होते हैं, जिनमें यज्ञ के नियमों का पूरी तरह से पालन होता है, साधारण भोले-भाले लोगों को केवल मंत्र दे देने से ही उनका कल्याण नहीं हो पाता, केवल यह कह देने से कि नित्य इतनी आहुतियां घी की दे देनी चाहिए, इससे किसी प्रकार का उसको लाभ नहीं हो पाता, बड़े-बड़े यज्ञ भी केवल जब स्वार्थपूर्ति के लिये प्रयुक्त होते हैं, तब उसमें सारे नियम ताक पर रख दिये जाते हैं, और इस प्रकार से साधकों को लाभ की बजाय हानि ही होती है।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि कोई मंत्र अपने आप में पूर्ण होता है, और यदि उससे सम्बन्धित यज्ञ किया जाय तो निश्चित रुप से उससे विशेष लाभ प्राप्त हो सकता है, परन्तु केवल मात्र जप करने से ही पूर्णता प्राप्त नहीं हो पाती और यदि साधक को यज्ञ के नियम और उसका विधान ज्ञात नहीं है तो यज्ञ करना ही व्यर्थ है, इसलिए साधक को चाहिये कि वह यज्ञ के नियमों से और यज्ञ विधान से पूरी तरह से परिचित हों और उसी तरीके यज्ञ कार्य सम्पन्न हो तो अवश्य ही यज्ञ में सफलता प्राप्त हो सकती है।

यज्ञ-विधान

यज्ञ प्रारम्भ करने से पूर्व यह देख लेना चाहिए कि मैं किस देवता को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ कर रहा हूँ, गायत्री यज्ञ में मुख्य देवता गायत्री होती है, अतः सबसे पहले गायत्री के यज्ञ का विधान मानस में स्थिर करना चाहिए।

यज्ञ के आधार दो होते हैं एक तो कुण्ड के माध्यम से यज्ञ कार्य सम्पन्न होता है और दूसरा वेदी के माध्यम से गायत्री यज्ञ सम्पन्न किया जा सकता है।

कुण्ड या वेदी का प्रमाण चौबीस अंगुल होता है, अर्थात् वेदी तीन मेखला से युक्त होनी चाहिए और वेदी का सबसे ऊपरी हिस्सा चौबीस अंगुल लम्बा चौड़ा होना चाहिए अर्थात् वेदी की लम्बाई 24 अंगुल तथा उसकी चौड़ाई भी 24 अंगुल होनी चाहिए, इसी प्रकार यदि कुण्ड में यज्ञ कार्य सम्पन्न होता है, तो कुण्ड का आधार और उसकी गहराई 24 अंगुल होनी चाहिये, यह चौबीस अंगुल का प्रमाण यजमान या मुख्य यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण के हाथ का नाप होना चाहिए अर्थात् या तो मुख्य यज्ञ कर्त्ता ब्राह्मण के हाथ की उंगलियों से चौबीस अंगुल का नाप लेना चाहिए या जो मुख्य यजमान है, उसके हाथ की अंगुलियों से चौबीस अंगुल नाप कर यज्ञ की वेदी या कुण्ड का आधार तैयार करना चाहिये।

शास्त्रों के अनुसार यज्ञ की वेदी या कुण्ड बनाने से पूर्व शुभ मुहूर्त देख लेना चाहिए, इसमें विशेष रुप से तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

रजस्वला पृथ्वी

1. जिस दिन प्रधान यज्ञ की वेदी या यज्ञ कुण्ड का निर्माण हो उस दिन पृथ्वी रजस्वला न हो। जिस समय पृथ्वी रजस्वला हो उस दिन यदि यज्ञ की वेदी या कुण्ड तैयार होता है, तो यजमान या यज्ञ करने वाले का वंश समाप्त हो जाता है।

रजस्वला पृथ्वी का शास्त्रोक्त प्रमाण इस प्रकार है-

पंचमी भौमवारेण, रविवारेण षष्ठीच।
सप्तमी भृगुवारेण, रजस्वला वसुन्धरा।।

अर्थात् यदि पंचमी को भौमवार (मंगलवार) हो, यदि षष्ठी को रविवार हो या सप्तमी को शुक्र हो तो उस दिन पृथ्वी रजस्वला हो जाती है और उस दिन से आगे चार दिन तक पृथ्वी रजस्वला रहती है, इन दिनों में पृथ्वी पर यज्ञ कार्य सम्पन्न नहीं होना चाहिये।

निद्रामग्न-

2. पृथ्वी यदि निद्रा मग्न होती है, तब भी पृथ्वी पर यज्ञ कार्य सम्पन्न नहीं होता। इस सम्बन्ध में भी शास्त्र प्रमाण साधक को मानकर चलना चाहिए, इसका प्रमाण इस प्रकार है-

अर्क सप्त नव पंचमी दिग्पाल गति जोय।
इक्कीसा चौबीस में धरती भरी नींद में होय।।

अर्थात् सूर्य संक्राति से 1, 5, 7, 9, 11, 21 और 24वें दिन पृथ्वी पर यज्ञ करना व्यर्थ होता है और इससे लाभ की बजाय हानि ही होती है।

3. यज्ञ की वेदी या यज्ञ कुण्ड का निर्माण करते समय काल का भी ध्यान रखना चाहिए, शुभ मुहूर्त और शुभ समय में यज्ञ वेदी की रचना करनी चाहिए, मंगलवार की यज्ञ वेदी या यज्ञ कुण्ड बनाने का निषेध है।

इसके बाद साधक को चाहिए कि वह भूमि की पूजा करे और भूमि से अनुमति लेकर ही यज्ञ कुण्ड का या यज्ञ वेदी का निर्माण करें।

यदि साधक के पास ताम्बे से या चांदी से बना हुआ यज्ञ कुण्ड है, तो उस यज्ञ कुण्ड में भी रजस्वला समय में या निद्रा समय में आहुतियां नहीं देनी चाहिए, उन दिनों में यज्ञ कार्य बन्द रहते हैं।

अग्नि-स्थापन

जब यज्ञ कुण्ड बन जाय तब विशेष मंत्रों से अग्नि का आह्वान किया जाता है, सर्वप्रथम यज्ञ वेदी या यज्ञ कुण्ड के अग्निकोण में अग्नि को स्थापित करना चाहिए, और उसके बाद ही यज्ञ कुण्ड के मध्य भाग में अग्नि को लाना चाहिए, प्रारम्भ में ही यज्ञ मण्डप या यज्ञ वेदी के बीच में अग्नि स्थापित नहीं होती।

अग्नि स्वरुप

प्रमुख बात यह है कि अग्नि के मूल स्वरुप को सम्मुख करना जरुरी है, यदि अग्नि जलाकर सीधे ही आहुतियाँ दे दी जाती है, तो ऐसी आहुतियाँ सर्वथा निष्फल होती है और यज्ञ कर्त्ता के जीवन में दरिद्रता ही लाती हैं, शास्त्रों में अग्नि का स्वरुप इस प्रकार माना गया है।

अधो मुखः, ऊर्ध्वपादः प्रांगूमुखो हव्यवाहन।
तिष्ठति व समाधीना, आहुतिं कस्य दी यते।।

अर्थात् अग्नि देव का मुंह नीचे की तरफ और पैर ऊपर की तरफ है, साथ ही साथ जमीन पर टिका हुआ उनका मुंह थोड़ा सा तिरछा हैं, ऐसी स्थिति में यदि अग्नि में घी या तिल जौ की आहुति देते हैं तो वह आहुति उसके पैरों में ही गिरती है, क्योंकि ऊपर आहुति छोड़ने पर अग्नि का स्वरुप उल्टा होने के कारण वह आहुति उसके मुंह में जा ही नहीं सकती, और जब उसके पैरों में ही आहुति

गिरती है, तो वह आहुति सम्बन्धित देवता तक कैसे पहुंच सकती है?

इसका समाधान यह है कि जब अग्नि को स्थापन किया जाय तो उत्तर दिशा की तरफ प्रणितापात्र स्थापन होना चाहिए और प्रणितापात्र के जल को अग्नि के चारों तरफ छिड़कने से अग्नि देव सीधे और सम्मुख हो जाते हैं तथा यजमान की आहुति लेकर संबंधित देवता तक पहुंचाने में सक्षम हो पाते हैं, अतः अग्नि स्थापन के बाद उसे प्रणिता के जल से विधान कर सम्मुख कर देनी चाहिए और इसके बाद ही आहुतियां दी जानी चाहिए।

पाठक स्वयं सोच सकते हैं, कि ऐसा न करके वे कितना अधिक अपने धन और शक्ति का अपव्यय और स्वयं का नुकसान ही करते हैं। कर्मकाण्ड के अनुसार यदि अग्नि को सम्मुख नहीं की जाती और आहुतियाँ दे दी जाती हैं, तो यजमान के घर में दरिद्रता ही आती है।

बड़े यज्ञों में भी मैंने इस प्रकार की न्यूनता देखी है, और इस न्यूनता की वजह से ही यजमान यज्ञ करने के बावजूद भी दरिद्री बना रहता है।

अग्नि नाम-

अग्नि कई प्रकार की होती है, अलग-अलग कार्यों में अलग-अलग नाम से युक्त अग्नि का आह्वान किया जाता हैं, यज्ञ मण्डप में अग्नि स्थापन की जाती है, और मरने के बाद श्मशान में चिता पर भी अग्नि स्थापन की जाती है, तो क्या ये दोनों ही अग्नि एक ही हैं? नहीं, इन दोनों में अन्तर है। मूल रुप से अग्नि एक होते हुए भी अलग-अलग कार्यो के लिये अलग-अलग नाम से युक्त अग्नि का आह्वान करना चाहिए, और उसी अग्नि देव को उसके नाम से बुलाकर, स्थापित कर, उससे प्रार्थना की जानी चाहिए कि वह आपकी आहुतियों को सम्बन्धित देवताओं तक पहुंचावे।

बहुत कम ब्राह्मणों और यज्ञ करने वालों को इन नामों के बारे में जानकारी हैं, यदि वह ऐसा नहीं करते तो यज्ञ मण्डप में भी मरघट की अग्नि को ही स्थापित कर लेते हैं, और इस प्रकार से वह अपना ही सर्वनाश करते हैं।

पाठकों की जानकारी के लिए अलग-अलग कार्यों के लिए सम्बन्धित अग्नि देवता का नाम स्पष्ट किया जा रहा है और यजमान जो कार्य करे उस समय उसी अग्नि का आह्वान करे तभी उसे पूर्ण सफलता मिल सकती है।

क्र.सं.	कार्य का नाम	अग्नि नाम
1.	भोजन पकाने के लिये	पावक
2.	गर्भाधान कार्य	मारुत
3.	पुंसवन कार्य	पावमान
4.	सीमन्त कार्य	मंगल
5.	नामकर्म संस्कार	प्रबल
6.	अन्नप्रासन संस्कार	शुचि
7.	चौलकर्म	सम्य
8.	व्रत उद्यापन	समुद्भव
9.	गोदान कार्य	सूर्य
10.	विवाह कार्य	योजक
11.	पुत्र प्राप्ति कार्य	आवासथ्य
12.	वैश्वदेव कार्य	रुक्मक
13.	प्रायश्चित कार्य	विटप
14.	देव कार्य	हव्यवाहन
15.	पितृ कार्य	कव्यवाहन
16.	शान्ति कार्य	वरदा
17.	पौष्टिक कार्य	वरदा
18.	पूर्णाहुति	मृडा
19.	आभिचारिक कार्य	कोध
20.	वशीकरण कार्य	कामदा
21.	पेट की अग्नि (क्षुधापूर्ण हेतु)	जठराग्नि
22.	चिता या मृतक कार्य	कृख्यानि
23.	लक्ष होम	वन्ही
24.	कोटि होम	हुताशन
25.	वृषोत्सर्ग	उध्वर
26.	समुद्र अग्नि	वाडव
27.	ब्रह्मा से सम्बन्धित कार्य	गार्हपत्य
28.	विष्णु कार्य	आव्हान्
29.	अग्निहोत्र	त्रय
30.	गायत्री यज्ञ	वरदा

इस प्रकार अलग-अलग कार्यों से सम्बन्धित यज्ञ के लिए अलग-अलग नाम से सम्बन्धित अग्नि का आह्वान् और उसका स्थापन होना चाहिए, इस प्रकार जब साधक अपने घर में या सामूहिक रुप से गायत्री यज्ञ करे, तो उसे चाहिए कि वह ''वरदा'' नामक अग्नि का आह्वान करें और उसे यज्ञ कुण्ड या यज्ञ वेदी पर स्थापित करें।

अग्नि आह्वान-

अग्नि को, उसे गौत्र और नाम के साथ आदरयुक्त बुलाकर स्थापित करनी चाहिए जिससे कि अग्नि देव प्रसन्न होकर यजमान के हविष्यान्न को सम्बन्धित देवता तक पहुंचाये। गायत्री यज्ञ में आव्हान् इस प्रकार किया जाना चाहिये।

ऊँ भर्भुवः स्वः अग्ने वेश्वानर शाण्डिल्यगोत्र शाण्डिलासित देवलेति त्रिप्रवरान्वित भूमिमातः वरुणपितः मेष ध्वज प्राङ्मुख मम सम्मुखो भव इति वरदानामानमग्नि प्रतिष्ठाप्य।

इसके बाद ''ऊँ भूभूर्व स्वः अग्नये नमः'' कह कर उसकी पूजा करनी चाहिए, अग्नि की पूजा में जल का प्रयोग नहीं किया जाता, जल के स्थान पर कुंकुंम केशर अग्नि की पूजा की जानी चाहिए।

किसी भी प्रकार का यज्ञ हो तो उसमें दक्षिण की तरफ ब्रह्मा की स्थापना होनी चाहिये, शास्त्रों के अनुसार यज्ञ निर्विघ्न हो तथा भूत, प्रेत-पिशाच, राक्षस आदि का प्रवेश न हो इसके लिए दक्षिण की तरफ ब्रह्मा की स्थापना की जाती है।

> जब तक बीजयुक्त गायत्री यज्ञ नहीं होता तब तक कोई लाभ नहीं होता, जब तक मात्र अग्नि जलाकर घी डाला जायेगा, तब तक घर में दरिद्रता और अभाव ही रहेगा। जब तक बिना कर्मकाण्ड नियमों के यज्ञ कुण्ड बनेंगे, तब तक घर में कलह और आर्थिक अवनति होती रहेगी।
>
> -वेदाचार्य (गायत्री यज्ञ के श्रेष्ठ विद्वान्)

ईशान कोण में नवग्रह की स्थापना आवश्यक है, और इसके साथ ही साथ कलश स्थापन होना जरुरी है।

गायत्री यज्ञ में यजमान को पूर्व की तरफ मुंह करके बैठना चाहिए, यदि उसकी पत्नी उसके साथ बैठती हैं, तो पत्नी को पति के दाहिने भाग में बैठना चाहिये।

ब्राह्मण किसी भी तरफ बैठ सकता है, परन्तु ब्राह्मण का मुंह दक्षिण दिशा की तरफ नहीं होना चाहिए।

यज्ञ में घी का ही प्रयोग किया जाना चाहिए, परन्तु इसमें गाय का घी सर्वात्तम माना है।

उत्तमं गौघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषीद्भवम्।

अर्थात् गाय का घी यज्ञ कार्य में सर्वश्रेष्ठ है, यदि वह नहीं मिले तो भैंस बकरी या अन्य पशु का घी प्रयोग में लेना चाहिये।

यदि तिल और जौ से यज्ञ किया जाय, तो एक भाग घी, एक भाग शक्कर, दो भाग जौ तथा आठ भाग तिल लेने चाहिये, तिल काले हों तो ज्यादा उचित रहता है, यदि इस प्रकार से नहीं होता तो यजमान का क्षय होता है।

वस्तुतः यज्ञ कार्य अपने आप में पूरा विधान है और यदि गायत्री यज्ञ में पूरी सावधानी नहीं बरती जाती, और केवल मात्र अग्नि जलाकर गायत्री मंत्र से आहुतियाँ दी जाती हैं तो निश्चित रुप से यजमान निर्धन रहता है, और उसके घर में अशान्ति कलह और दरिद्रता बनी रहती है।

देखा गया है कि साधक केवल मात्र गायत्री उच्चारण करते हुए आहुतियां देते रहते हैं, न तो उन्हें ज्ञान हैं, और न उनके पास योग्य गुरु का मार्ग निर्देशन है, ऐसा न होने पर वे चाहे कितने ही गायत्री मंत्र जपें, चाहें कितने ही अनुष्ठान करें, और चाहे कितने ही यज्ञ करें, वह सब निष्फल होता है।

यदि यज्ञ विधि-विधान के साथ नहीं किया जाता, यदि यज्ञ में जो नियम होते हैं, उनका पालन नहीं किया जाता है या यज्ञ कराने वाले को कर्मकाण्ड का ज्ञान नहीं होता तो वह यजमान या साधक यज्ञ करने के बाद भी दरिद्री बना रहता है।

प्रत्येक साधक को चाहिए कि वह एक बार पुनः चिन्तन करे और यह देखे कि क्या मैं सही प्रकार से यज्ञ के नियमों को जानता हूं क्या मुझे सही प्रकार से मार्ग दर्शन मिलता है? और यदि ऐसा नहीं है तो उसे किसी योग्य गुरु या विद्वान् के पास जाकर इन सारे नियमों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और उसके बाद ही व्यक्तिगत अथवा सामूहिक यज्ञ में भाग लेना चाहिए, केवल मात्र किसी के कहने से यज्ञ में बिना नियमों की जानकारी के यज्ञ करने से वह अपना स्वयं का ही अहित करता है।

ऊपर जो भी जानकारी दी हुई है, वह शास्त्र नियमों के अनुरुप है और शास्त्रों की मर्यादा के अनुसार ही यज्ञ कार्य सम्पन्न होने पर सफलता मिलती है।

◆◆◆

नवरात्रि पर बनवायें अपने लिये
भाग्यशाली कवच,
अपनी सम्पूर्ण जानकारी दे कर।
निमार्ण होगा सिर्फ आपके लिये।

आखिर पूजा पाठ के अंत में हवन करने के पीछे क्या कारण है?

सृष्टि के सभी तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश के विभिन्न संयोजनों से बने हैं। जगत का ही एक अंश होने के कारण मनुष्य भी इन्हीं पांच तत्त्वों से बना है। इन तत्त्वों में से अग्नि विशेष है। जहाँ एक ओर अन्य सभी तत्त्व प्रदूषित हो सकते है, वहीं अग्नि को दूषित नहीं किया जा सकता।

हमारे ऋषि अग्नि की इस विशेषता से भली भांति परिचित थे और इसीलिए हवन और दूसरे सभी वैदिक कर्मों में अग्नि का विशेष महत्त्व होता है। हवन मात्र एक कर्मकांड नहीं बल्कि एक योगी के लिए उन दिव्य शक्तियों से वार्तालाप का माध्यम है जो इस सृष्टि को चलाती हैं।

तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि वे तत्त्व शुद्ध नहीं हैं जिनसे मनुष्य बना है। जिस प्रकार इस संसार में पृथ्वी, जल, वायु व आकाश प्रदूषित हो जाते हैं, उसी प्रकार से मानव शरीर में भी इन तत्त्वों का प्रदूषित होना संभव है। यह प्रदूषण मनुष्य को पतन अथवा विकृति की ओर धकेलता है।

मनुष्य में इन तत्त्वों के प्रदूषण का पता लगाना अति सरल है। पृथ्वी तत्त्व के दूषित होने से व्यक्ति को समाज में प्रतिष्ठित पद और भव्य जीवन शैली जैसी सुविधाएँ पाने की इच्छाएँ बेलगाम होने लगती हैं।

जब जल तत्त्व दूषित होता है तो अप्राकृतिक काम इच्छा जागृत होने लगती है। वैदिक शास्त्र अपनी स्वाभाविक इच्छाओं का दमन करने के लिए नहीं कहता। अग्नि तत्त्व को दूषित नहीं किया जा सकता। योग और सनातन क्रिया की साधना से साधक अग्नि तत्त्व के अनुकूल स्तर बनाए रख सकता है।

वायु तत्त्व यह निश्चित करता है कि हृदय व फेफड़े ठीक से कार्य करें। इस तरह रक्त संचार प्रणाली और श्वास प्रणाली भी सही काम करती रहती है।

अंत में दूषित आकाश तत्त्व के कारण थायरायड व पैराथायरायड ग्रंथियों के रोग और श्रवण शक्ति का क्षीण होना पाया जाता है। मात्र एक हवन में ही यह क्षमता होती है कि मनुष्य के सभी दोष समाप्त हो सकें।

केवल गायत्री मंत्र गृहस्थ व्यक्तियों के लिये उपयोगी नहीं है, यह तो सन्यासियों का मंत्र है, साधुओं का प्रणव है।

गृहस्थ व्यक्तियों को प्रणव लगाकर श्री युक्त गायत्री मंत्र जप करना चाहिए, तभी उनके जीवन में उन्नति हो सकती है।

गायत्री यज्ञ नहीं, सर्वतोभद्र विधानयुक्त गायत्री यज्ञ हो, गायत्री मंत्र नहीं, श्री बीजांकृत गायत्री मंत्र जप हो, गायत्री अनुष्ठान नहीं, हेमाद्री गायत्री अनुष्ठान हो, तभी जीवन में समृद्धि पूर्णता एवं श्रेष्ठता आ सकती है।

–योगी चैतन्यनाथ, बद्रीकाश्रम